ATMA BODH

By : Jain Hemant Lodha

Atma Bodh

By: Jain Hemant Lodha

© Copyright All rights reserved
It would be my pleasure to give permission to reproduce or transmit any part of the book, in any form or by any means.

Author
Hemant Lodha
Mobile: 9325536999
Email: lodhah@gmail.com

https://www.facebook.com/lodhah
https://www.linkedin.com/in/hemantclodha/
https://www.instagram.com/hemantlodha/

Published by
Self Published

ISBN: ----------------------

Not For Sale

Atma Bodh: An Introduction

Ātma Bodha (आत्मबोध), meaning "Self-Knowledge," is a profound spiritual text attributed to the great Indian philosopher and Advaita Vedānta master, Ādi Śaṅkarācārya. Comprising 68 succinct verses, this scripture serves as a practical guide for seekers on the path of Self-realization. Unlike deeply metaphysical texts like the Brahma Sūtra or Upaniṣads, Ātma Bodha presents the essential teachings of Advaita in a concise, accessible, and methodical manner, making it an ideal entry point for both beginners and experienced aspirants.

Śaṅkara composed this text for seekers who have attained a certain degree of inner purity, calmness, and dispassion through disciplined living and devotion. The book emphasizes that Self-knowledge is the direct means to liberation, just as fire alone can cook food. Rituals, austerities, and devotion are valuable but preparatory—they cleanse the mind, whereas it is jñāna (knowledge) that reveals the Self.

Each verse in Ātma Bodha uses vivid analogies from daily life—such as the sun dispelling darkness, the reflection of the moon in water, or mistaking a rope for a snake—to illustrate deeper philosophical truths. It clearly distinguishes the Self from the body, mind, intellect, and ego, and points the seeker toward the eternal, changeless, and blissful nature of the Self (satchidānanda). The text also outlines practical means for contemplation, meditation, and discrimination to help internalize this truth.

In essence, Ātma Bodha is a mirror in which the sincere seeker can recognize their own divine nature. It is a timeless torchlight that dispels the darkness of ignorance and reveals the radiant presence of the Self within.

Forward by Hemant Lodha

Atmabodh—"Self-Knowledge"—is a luminous gem in the Advaita Vedanta tradition, attributed to **Adi Shankaracharya**, one of India's greatest spiritual masters. In just a handful of verses, this text distills the path to liberation: not through rituals or blind belief, but through direct realization of the Self.

Clear, poetic, and profound, *Atmabodh* guides the seeker from ignorance to awakening. Its verses reveal that the Self is ever-pure, ever-free, and ever-present—hidden only by the veil of false identification.

This is not a text for armchair philosophy. It is a call to inner inquiry, to look beyond appearances, and to recognize the timeless truth within. In a distracted world, *Atmabodh* offers clarity. In a restless mind, it sows stillness.

May these teachings ignite your inner fire for truth, and lead you, step by step, to your own Self—unbound, undivided, and eternal.

Hemant Lodha
Director, SMS Ltd.
Blogger, Writer, Poet, Seeker, TEDx Speaker, Mentor,
Scripture Translator

तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम्।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते॥१॥

पाप नष्ट तप से किये, शांतचित्त वीतराग।
मोक्ष की इच्छा रहे, आत्मज्ञान की आग॥१॥

तपस्या के द्वारा जिनके पाप नष्ट हो गए हैं, जो शांतचित्त और विरक्ति युक्त हैं, तथा जो मोक्ष की इच्छा रखते हैं, उनके लिए आत्मज्ञान का उपदेश दिया जाता है।

For those whose sins have been destroyed through austerities, who are calm, free from attachment, and desirous of liberation, the knowledge of the Self is imparted.

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वन्हिवज्ज्ञानं विनामोक्षो न सिध्यति॥२॥

बिन ज्ञान न हो मुक्ति पथ, साधन सब व्यर्थ जान।
जैसे बिन अग्नि पाक नहीं, हो मुक्ति हो बिन ज्ञान॥२॥

अन्य साधनों की तुलना में आत्मबोध सीधा और एकमात्र मोक्ष का साधन है। जैसे पकाने के लिए अग्नि आवश्यक है, वैसे ही मोक्ष के लिए ज्ञान अनिवार्य है।

Self-knowledge, unlike other means, is the direct and sole path to liberation. Just as fire is essential for cooking, knowledge is indispensable for attaining liberation.

अविरोधितया कर्म नाऽविद्यां विनिवर्तयेत्।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत्॥३॥

कर्म नाश ना कर सके, अज्ञानमय अंधकार।
ज्ञान सूर्य जब चमकता, हो तमस का संहार॥३॥

कर्म अज्ञान का नाश नहीं कर सकते क्योंकि वे उसका विरोध नहीं करते। जैसे तेजस्वी प्रकाश घने अंधकार को दूर कर देता है, वैसे ही ज्ञान अज्ञान का नाश करता है।

Action cannot destroy ignorance, for it is not opposed to it. Knowledge alone destroys ignorance, just as light dispels intense darkness.

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेऽंशुमानिव॥४॥

अज्ञान से ढका रहा, आत्मा सीमित जान।
मेघ हटे सूर्य चमके, चमके आत्मज्ञान॥४॥

अज्ञान के कारण आत्मा सीमित प्रतीत होती है। जैसे बादलों के हटने पर सूर्य स्वयं प्रकाशमान हो जाता है, वैसे ही अज्ञान के नष्ट होने पर आत्मा स्वतः प्रकाशित हो जाती है।

Due to ignorance, the Self appears limited. But when ignorance is destroyed, the Self shines forth by itself, just as the sun shines clearly when clouds disappear.

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्विनिर्मलम्।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कठिनकाष्ठवत्॥५॥

अज्ञान से मलिन हुआ, ज्ञान से निर्मल होय।
जलती लकड़ी छू लिया, जल का अंत हो जाय॥५॥

अज्ञान से मलिन जीव ज्ञान के अभ्यास से निर्मल हो जाता है। जैसे जलती हुई लकड़ी के संपर्क से जल नष्ट हो जाता है, वैसे ही ज्ञान अज्ञान को स्वयं ही नष्ट कर देता है।

The individual soul, tainted by ignorance, becomes purified through the practice of knowledge. Just as water evaporates when it touches burning wood, knowledge itself destroys ignorance.

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत्॥६॥

स्वप्न समान संसार यह, राग-द्वेष में लीन।
जागे ज्ञान प्रबोध से, टूटे माया की छीन॥६॥

संसार स्वप्न के समान है, जो राग-द्वेष आदि से भरा हुआ है। अपने समय में यह सत्य प्रतीत होता है, परंतु जागृति (ज्ञान) होने पर इसका सत्यत्व समाप्त हो जाता है।

The world is like a dream, filled with attachment and aversion. It appears real in its time, but upon awakening (with knowledge), its reality dissolves.

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्॥७॥

ज्यूँ सीप चाँदी लगे, जगत सत्य अंजान।
ब्रह्म का जब ज्ञान हो, जग मिथ्या पहचान॥७॥

जगत उतना ही सत्य प्रतीत होता है, जितना शुक्ति (सीप) में चाँदी का भ्रम होता है। यह भ्रम तब तक बना रहता है जब तक ब्रह्म — जो सर्वाधार और अद्वैत है — का ज्ञान नहीं होता।

The world appears real just as silver appears in a shell. But this illusion persists only until Brahman, the non-dual substratum of all, is known.

**उपादानेऽखिलाधारे जगन्ति परमेश्वरे।
सर्गस्थितिलयान्यान्ति बुदबुदानीव वारिणि॥८॥**

**उत्पन्न स्थिति व प्रलय हो, बुलबुले जल संचार।
वैसे कारण जगत का, परमेश्वर आधार॥८॥**

जो परमेश्वर सभी का उपादान कारण और आधार है, उसी में समस्त जगत उत्पत्ति, स्थिति और लय को प्राप्त होता है, जैसे बुलबुले जल में।

In the Supreme Being, the substratum and material cause of all, the worlds arise, exist, and dissolve, just as bubbles form and merge back into water.

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः।
व्यक्त्यो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत्॥९॥

कटक-कुण्डल कल्पित है, स्वर्ण स्थाई जान।
सच्चिदानन्द नित्य शक्ति, कणकण में विद्यमान॥९॥

जिस प्रकार स्वर्ण में कटक-कुंडल इत्यादि आभूषण कल्पित होते हैं, उसी प्रकार सभी भिन्न-भिन्न वस्तुएँ सच्चिदानंदस्वरूप, नित्य, विष्णुरूप आत्मा में ही कल्पित हैं।

Just as various ornaments like bangles and earrings are imagined in gold, all diverse forms are projected upon the eternal, all-pervading Self — the embodiment of existence, consciousness, and bliss.

यथाऽऽकाशो हृषीकेशो नानापाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे केवलो भवेत्॥१०॥

अनेक तरह उपाधियाँ, भिन्न प्रतीत आकाश।
नष्ट हो जब उपाधियाँ, ईश्वर एक आभास॥१०॥

जैसे सर्वव्यापक आकाश, अनेक प्रकार की उपाधियों के कारण भिन्न-
भिन्न प्रतीत होता है; वैसे ही हृषीकेश (ईश्वर) भी उपाधियों के कारण विभिन्न रूपों में दिखते हैं। लेकिन जब ये उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं, तो वही एक मात्र सत्ता शेष रह जाती है।

Just as the all-pervading space appears different due to various limitations (like jars or rooms), so too does the Supreme Lord appear as many because of diverse conditionings. When those conditionings disappear, only the One remains.

नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत्॥११॥

जाति, वर्ण व आश्रम भी, विभिन्न उपाधि भाव।
आत्मा पर रोपित किये, जल रस रंग प्रभाव॥११॥

विभिन्न उपाधियों के प्रभाव से जाति, वर्ण और आश्रम आदि के भेद आत्मा पर आरोपित हो जाते हैं, जैसे जल पर उसके रस और रंग का प्रभाव प्रतीत होता है।

Due to various conditionings, distinctions like caste, color, and stage of life are superimposed on the Self—just as flavor and color are seen as distinctions in water.

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम्।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते॥१२॥

पंचीकृत भूत तन बना, संचित कर्म निमित्त जान।
तन ही सुख दुख भोगता, साधन इसको मान॥१२॥

पंचीकृत महाभूतों से बना हुआ यह स्थूल शरीर संचित कर्मों का फल भोगने का माध्यम है। इसी शरीर में सुख-दुःख का अनुभव होता है, इसलिए इसे भोग का साधन कहा गया है।

This gross body, formed from the five great elements (panch□krita mah□bh□ta) and driven by accumulated karma, is the instrument through which pleasure and pain are experienced.

पंचप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥१३॥

पंच प्राण मन बुद्धि सहित, दस इन्द्रिय का योग।
अपंचीकृत भूत उत्पन्न, सूक्ष्म शरीर संभोग॥१३॥

अपंचीकृत सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न यह सूक्ष्म शरीर — जिसमें पाँच प्राण, मन, बुद्धि और दस इन्द्रियाँ सम्मिलित हैं — सुख-दुःख के अनुभव का माध्यम है।

Composed of the five vital airs, mind, intellect, and ten senses, and born from uncompounded subtle elements, the subtle body serves as the instrument for experiencing enjoyments.

अनाद्यविद्यानिर्वाच्य कारणोपाधिरुच्यते।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत्॥१४॥

अनिर्वचनीय अनादि है, अविद्या कारण शरीर।
शरीर और उपाधि नहीं, आत्मा अन्य अशरीर॥१४॥

जो अनादि और अवर्णनीय अविद्या है, वही कारण शरीर कहलाती है। यह निश्चित जानना चाहिए कि आत्मा इन तीनों उपाधियों (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) से भिन्न और परे है।

The indescribable, beginningless ignorance is called the causal body. One should clearly understand that the Self is distinct from all three bodies or conditionings.

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा॥१५॥

नील वस्त्र के सम्पर्क से, स्फटीक नीला भान।
शुद्ध आत्मा तन्मय हुआ, पंचकोशादि अज्ञान॥१५॥

जैसे शुद्ध स्फटिक नील वस्त्र के साथ रहने पर नीला प्रतीत होता है, वैसे ही शुद्ध आत्मा भी पंचकोशों के संयोग से उनमें लिप्त हुआ-सा प्रतीत होता है।

Just as a clear crystal appears blue due to its proximity to a blue cloth, so too does the pure Self appear to assume the qualities of the five sheaths due to association with them.

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावघाततः।
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा॥१६॥

जैसे चावल छिलके से, अलग करे प्रत्येक।
शुद्धात्मा पंचकोश से, अलग करता विवेक॥१६॥

जैसे धान्य को उसके बाहरी छिलकों (तुष आदि) से अलग किया जाता है, वैसे ही युक्ति और विवेक से युक्त साधक को आत्मा को पंचकोशों से अलग करना चाहिए।

Just as rice is separated from its husk through proper method and effort, so too must the pure Self be discriminated from the five sheaths through reason and discernment.

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते।
बुद्धावेवावभासते स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत्॥१७॥

स्वच्छ दर्पण में दिखे, प्रतिबिम्ब का अहसास।
सर्वव्यापक है आत्मा, शुद्ध बुद्धि आभास॥१७॥

यद्यपि आत्मा सदा और सर्वत्र विद्यमान है, फिर भी वह सब स्थानों में प्रकट नहीं होता। जैसे प्रतिबिंब केवल स्वच्छ दर्पण में ही दिखता है, वैसे ही आत्मा भी केवल शुद्ध बुद्धि में ही अनुभव होता है।

Though the Self is ever-present and all-pervading, it does not manifest everywhere. It reveals itself only in the purified intellect, just as a reflection appears only in a clean mirror.

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।
तदवृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा॥१८॥

तन मन बुद्धि इन्द्रियाँ, प्रकृति की पहचान।
आत्मा केवल देखता, राजा मान महान॥१८॥

आत्मा शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और प्रकृति से भिन्न है। जैसे राजा प्रजा की गतिविधियों का साक्षी होता है, वैसे ही आत्मा इन सबकी वृत्तियों का साक्षी मात्र होता है।

The Self is distinct from the body, senses, mind, intellect, and nature. One should always recognize the Self as the witness of all their functions, just as a king observes his subjects.

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी॥१९॥

ज्यूँ चन्द्र दिखता भागता, बादलों के संग संग।
आत्मा भी प्रतीत हो, जब इन्द्रियों की तरंग॥१९॥

जैसे गतिशील बादलों के साथ स्थिर चन्द्रमा भी चलता हुआ प्रतीत होता है, वैसे ही अविवेकी लोगों को इन्द्रियों के कार्य करने पर आत्मा भी कर्मशील लगता है।

When the senses are active, the Self appears to be active too—just as the stationary moon seems to move along with passing clouds to those lacking discernment.

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वक्रियार्थेषु वर्तन्ते सूर्यलोकं यथा जनाः॥२०॥

ज्यूँ सूर्य के प्रकाश में, प्रवृत्त जीव आचार।
आत्मा के आश्रय से, तन मन बुद्धि व्यापार॥२०॥

जैसे लोग सूर्य के प्रकाश का सहारा लेकर अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, वैसे ही शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि आत्मा के चैतन्य का आश्रय लेकर अपने-अपने कार्यों में संलग्न होते हैं।

Just as people carry out their actions under the light of the sun, so too do the body, senses, mind, and intellect function by depending on the consciousness of the Self.

देहेन्द्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि।
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलतादिवत्॥२१॥

नभ नीला दिखता ज्यूँ, आकाश तत्त्व अज्ञान।
सत् चित्त आनंद आत्मा, देह इन्द्रिय का भान॥२१॥

जिस प्रकार आकाश के असली स्वरूप को न जानने पर उसमें नीलिमा का आरोप होता है, उसी प्रकार अविवेक के कारण शुद्ध सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मा में शरीर, इन्द्रियों के गुण और कर्मों का अध्यास कर लिया जाता है।

Just as the sky appears blue due to ignorance of its true nature, the qualities and actions of the body and senses are falsely attributed to the pure, blissful Self due to lack of discrimination.

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाम्भसः॥२२॥

ज्यूँ चन्द्र की चंचलता, चंचल जल में भान।
अन्तःकरण की उपाधि से, आत्मा कर्ता मान॥२२॥

जिस प्रकार जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की गति जल की चंचलता के कारण प्रतीत होती है, उसी प्रकार अन्तःकरण की उपाधि से आवृत होने पर अज्ञानवश आत्मा में कर्तापन आदि का आरोप हो जाता है।

Due to ignorance and the conditioning of the mind, doership and similar attributes are superimposed on the Self—just as movement is falsely attributed to the reflected moon in moving water.

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः॥२३॥

राग, इच्छा और सुख दुख, है बुद्धि के परिणाम।
सुषुप्ति में बुद्धि नहीं, हो रागादि नाकाम॥२३॥

राग, इच्छा, सुख-
दुख आदि केवल तब होते हैं जब बुद्धि सक्रिय होती है। ग
हरी नींद (सुषुप्ति) में जब बुद्धि लीन हो जाती है, तब ये स
भी समाप्त हो जाते हैं। इसलिए ये सभी बुद्धि के धर्म हैं,
आत्मा के नहीं।

Desire, attachment, pleasure, and pain arise only when the intellect is active. In deep sleep, when the intellect is absent, these do not exist. Hence, they belong to the intellect, not to the Self.

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता।
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलात्मनः॥२४॥

सूर्य प्रकाश शीतल जल, अग्नी उष्ण स्वभाव।
सत् चित आनन्द नित्यता, आत्मा निर्मल भाव॥२४॥

जैसे सूर्य का प्रकाश, जल की शीतलता और अग्नि की उष्णता उनका स्वभाव है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव सच्चिदानन्द, नित्यता और निर्मलता है।

Just as light is the nature of the sun, coolness of water, and heat of fire—existence, consciousness, bliss, eternity, and purity are the essential nature of the Self.

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम्।
संयोज्य चाविवेकेन जानामिति प्रवर्तते॥२५॥

आत्मा का सत् चित् अंश, बुद्धि वृति का योग।
बुद्धि जाने आत्मा नहीं, है अविवेक संयोग॥२५॥

आत्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप और बुद्धि की वृत्ति — इन दोनों का अविवेक के कारण एकत्र होने से "मैं जानता हूँ" ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। वास्तव में जाननेवाली बुद्धि है, आत्मा नहीं।

The Self's aspect of existence and consciousness, when mistakenly combined with the modifications of the intellect due to lack of discrimination, gives rise to the idea "I know." In truth, it is the intellect that knows—not the Self.

आत्मनो विक्रियानास्ति बुद्धेर्बोधो न जान्विति।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा ज्ञाता द्रष्टेति मुह्यति॥२६॥

आत्मा कुछ करता नहीं, बुद्धि ज्ञान अभाव।
ज्ञाता द्रष्टा मानता, जीव भ्रमित स्वभाव॥२६॥

आत्मा की कोई विक्रिया नहीं होती और बुद्धि में स्वयं जानने की शक्ति नहीं होती, फिर भी अविवेक के कारण जीव स्वयं को ज्ञाता और द्रष्टा मानकर भ्रमित रहता है।

The Self undergoes no change, and the intellect does not possess knowledge on its own. Yet, the deluded soul, identifying with both, imagines itself to be the knower and the seer, and thus falls into delusion.

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्॥२७॥

रस्सी को सर्प जानकर, जीव होय भयभीत।
मैं जीव नहीं परमात्मा, जाने तो हो जीत॥२७॥

जैसे कोई व्यक्ति रज्जु (रस्सी) को सर्प समझकर भयभीत हो जाता है, वैसे ही आत्मा को जीव समझने से भय उत्पन्न होता है। लेकिन जब वह जान लेता है कि “मैं जीव नहीं, परमात्मा हूँ,” तो वह भय से मुक्त हो जाता है।

Just as one fears a rope mistaken for a snake, so too does one fear when identifying the Self as the limited individual. But knowing “I am not the jīva; I am the Supreme Self,” one becomes fearless.

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनिन्द्रियाणि च।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते॥२८॥

घट में दीप प्रकाश करे, आत्मा करे प्रकाश।
इन्द्रियाँ बुद्धि तो जड़ है, चेतन आत्मा वाश॥२८॥

जैसे एक दीपक से घट आदि प्रकाशित होते हैं, वैसे ही ए
कमात्र आत्मा बुद्धि और इन्द्रियों को प्रकाशित करता है।
बुद्धि और इन्द्रियाँ स्वयं जड़ हैं, वे आत्मा को प्रकाशित न
हीं कर सकतीं।

The Self alone illumines the intellect and the senses, just as a lamp illumines pots and other objects. These instruments are inert and cannot illumine the Self in return.

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः।
न दीपास्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मप्रकाशने॥२९॥

अन्य दीप लगता नहीं, दीपक को जब जान।
है स्वप्रकाशित आत्मा, अनावश्यक अन्य ज्ञान॥२९॥

जैसे दीपक को स्वयं को प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही आत्मा जो स्वभाव से ही ज्ञानस्वरूप है, उसे अपने ज्ञान के लिए किसी अन्य प्रकाश या साधन की आवश्यकता नहीं होती।

Just as a lamp does not need another lamp to illumine itself, so too the Self, being of the nature of pure consciousness, does not require any other knowledge to know itself.

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीतिवाक्यतः।
विद्यादैक्यं महावक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः॥३०॥

यह नहीं व वह भी नहीं, उपाधियों का त्याग।
जीवात्मा परमात्मा, महावाक्य अनुराग॥३०॥

'नेति-
नेति' जैसे वाक्यों के द्वारा सभी उपाधियों का निषेध कर, शास्त्रों के महावाक्यों के माध्यम से यह जानो कि जीवात्मा और परमात्मा वास्तव में एक ही हैं।

By negating all limiting adjuncts through scriptural statements like "not this, not this," one should realize the identity of the individual soul and the Supreme Self as taught by the great sayings (mah□v□kyas).

अविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम्।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम्॥३१॥

शरीरादि दृश्य अविद्या, है बुदबुदे समान।
मै हूँ शुद्ध ब्रह्म आत्मा, ऐसा रखना ज्ञान॥३१॥

शरीर आदि दृश्य पदार्थ अविद्या के कारण उत्पन्न होते हैं और वे जल के बुदबुदे के समान नश्वर हैं। उनसे सर्वथा भिन्न, निर्मल और शुद्ध ब्रह्म स्वरूप "मैं" हूँ — ऐसा जानना चाहिए।

The body and other perceptible things are products of ignorance and are perishable like bubbles in water. One should know oneself as distinct from them—pure, stainless, and the very Brahman.

देहान्यत्वान्न मे जन्म जरा कर्ष्य लयादयः।
शब्दादिविषयैः संगो निरीन्द्रियतया न च॥३२॥

जन्म बुढापा क्षय मृत्यु, मुझसे भिन्न ही जान।
इन्द्रिय रहित मैं आत्मा, विषयों से अन्जान॥३२॥

मैं शरीर से भिन्न हूँ, इसलिए जन्म, बुढ़ापा, क्षय और मृत्यु जैसे गुण मुझमें नहीं हैं। क्योंकि मैं इन्द्रियों से रहित हूँ, इसलिए मेरा शब्द, स्पर्श आदि विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं।

Being other than the body, I have no birth, old age, decay, or death. And being without senses, I have no connection whatsoever with sense objects like sound, touch, etc.

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेष भयादयः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादि श्रुतिशासनात्॥३३॥

दुःख, राग, द्वेष और भय, मेरा ना है मान।
मन प्राण रहित शुद्धरुप, श्रुत वचन है ज्ञान॥३३॥

मैं मन नहीं हूँ, इसलिए दुःख, राग, द्वेष और भय जैसे भाव मुझमें नहीं हैं। वेदवाक्य भी कहते हैं कि आत्मा प्राण रहित, मन रहित और पूर्णतः शुद्ध है।

As I am beyond the mind, sorrow, attachment, hatred, and fear do not belong to me. The scriptures declare: “He is without pr□□a and without mind—ever pure.”

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः॥३४॥

मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य हूँ, निर्विकल्प व निर्विकार।
निरंजन व नित्यमुक्त हूँ, निर्मल और निराकार॥३४॥

मैं गुणों से रहित, क्रियाओं से रहित, सदा शाश्वत, विकल्प रहित, मलरहित, विकार रहित, निराकार, सदा मुक्त और पूर्णतः निर्मल आत्मा हूँ।

I am beyond all attributes, beyond all action, eternal, free of all duality, stainless, changeless, formless, ever-liberated, and pure.

सदा सर्वसमः शुद्धो निस्संगो निर्मलोऽचलः॥३५॥

बाहर भीतर व्याप्त मैं, जैसे है आकाश।
सदा सर्वत्र शुद्ध असंग, निर्मल अचल प्रवास॥३५॥

मैं आकाश की भाँति सबके भीतर और बाहर व्याप्त हूँ, अविनाशी हूँ। मैं सदा सर्वत्र समान, शुद्ध, असंग, निर्मल और अचल स्वरूप हूँ।

Like space, I pervade all things both within and without. I am changeless, ever the same everywhere, pure, unattached, stainless, and immovable.

नित्य शुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत्॥३६॥

नित्य, शुद्ध, सर्वथामुक्त हूँ, अखण्ड आनन्द जान।
अद्वितीय अनन्त परब्रह्म, मै ही सत्य व ज्ञान॥३६॥

जो नित्य है, शुद्ध है, सर्वथा मुक्त है, अखण्ड आनन्दस्वरूप है, अद्वैत है, सत्य है, ज्ञानस्वरूप है और अनन्त है — वही परम ब्रह्म मैं हूँ।

I am indeed that Supreme Brahman, which is eternal, pure, absolutely free, indivisible bliss, non-dual, truth, knowledge, and infinite.

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्माहमस्मीति वासना।
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम्॥३७॥

जिस प्रकार रोग मिटे, करे रसायन नाश।
"मै ब्रह्म हूँ" निरन्तर जपे, अविद्या सर्वनाश॥३७॥

जैसे रसायन औषधि रोगों को दूर कर देती है, वैसे ही "मैं ब्रह्म हूँ" —
इस वासना (निष्ठा) का निरन्तर अभ्यास अविद्या से उत्पन्न हुए विक्षेपों को समाप्त कर देता है।

Just as medicine destroys diseases, the constant practice of the thought "I am Brahman" destroys the disturbances caused by ignorance.

**विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः।
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः॥३८॥**

**एकान्त स्थान हो स्थित, जितेन्द्रिय वीतराग।
अनन्त आत्मा अनन्य है, चिन्तन की हो आग॥३८॥**

एकान्त में स्थित होकर, राग से रहित होकर और इन्द्रियों को वश में करके, अनन्य चित्त से उस एक अनन्त आत्मा का निरन्तर ध्यान करना चाहिए।

Seated in a solitary place, free from desires and with controlled senses, one should meditate with single-pointed mind on the one infinite Self.

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः।
भावयेदेकमात्मनं निर्मलाकाशवत्सदा॥३९॥

सर्व जगत विलीन करे, विवेकपूर्व बुद्धिमान।
निर्मल आकाश की तरह, आत्म चिन्तन ध्यान॥३९॥

विवेकी मनुष्य को चाहिए कि वह सम्पूर्ण दृश्य जगत को बुद्धिपूर्वक आत्मा में ही लीन कर दे और सदा निर्मल आकाश के समान शुद्ध एक आत्मा का ध्यान करता रहे।

The wise one should, with discrimination, merge all objects of perception into the Self alone, and constantly contemplate on the one pure Self—like the clear, infinite sky.

रूपवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित्।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते॥४०॥

परम तत्व जो जानता, रूप वर्ण का त्याग।
परिपूर्ण चिदानंद स्वरुप, हो स्थित, नहीं राग॥४०॥

जो परम तत्त्व को जान चुका है, वह रूप, रंग आदि समस्त इन्द्रियगोचर विषयों का त्याग कर पूर्ण चिदानन्द स्वरूप आत्मा में ही स्थित हो जाता है।

The knower of the Supreme Truth renounces all forms, colors, and sensory distinctions, and abides firmly in the complete, blissful consciousness that is his true Self.

ज्ञातृज्ञानज्ञेय भेदः परे नात्मनि विद्यते।
चिदानन्दैकरूपत्वद् दीप्यते स्वयमेव हि॥४१॥

परम ब्रह्म में भेद नहीं, ज्ञाता ज्ञेय व ज्ञान।
स्व प्रकाश चिदानन्द रुप, सबका मान समान॥४१॥

परमात्मा में न ज्ञाता का भेद है, न ज्ञान का, न ज्ञेय का। क्योंकि वह चिदानन्द का एकरूप स्वरूप है, वह स्वयं ही प्रकाशित होता है।

In the Supreme Self, there is no distinction between the knower, the knowledge, and the known. Being of the nature of pure consciousness and bliss, it shines by its own light.

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते।
उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत्॥४२॥

आत्मा को अरणी बना, निरन्तर मन्थन ध्यान।
उत्पन्न ज्वाला ज्ञान की, नष्ट करती अज्ञान॥४२॥

जब आत्मा को अरणी की तरह लेकर निरन्तर ध्यान रूपी मंथन किया जाता है, तब उससे उत्पन्न होने वाली ज्ञान-ज्वाला सम्पूर्ण अज्ञान रूपी ईंधन को भस्म कर देती है।

When the Self is used as the lower fire-stick and meditation as the upper, and the two are continuously churned together, the flame of realization that arises burns away all the fuel of ignorance.

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसन्तमसे हृते।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव॥४३॥

सूर्य की लालिमा करे, नष्ट घोर अन्धकार।
ज्ञान जब होता प्रकट, खुले आत्म का द्वार॥४३॥

जैसे अरुणोदय (प्रभात की लालिमा) से पूर्वरात्रि का अंधकार मिट जाता है, वैसे ही बोध (ज्ञान) के उदय से अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। इसके बाद आत्मा सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित हो उठता है।

Just as the darkness of night is dispelled by the reddish dawn before sunrise, in the same way, when ignorance is removed by the light of knowledge, the Self shines forth by itself like the rising sun.

**आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्तवदविद्यया।
तद्विनाशे प्रपत्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा॥४४॥**

**आत्मा नित्य प्राप्त है, अनुभव नहीं अज्ञान।
अज्ञान नष्ट, भासित हो, कण्ठ कण्ठी का भान॥४४॥**

आत्मा सदा ही उपलब्ध है, परन्तु अज्ञानवश वह अप्राप्त सा प्रतीत होता है। जब अज्ञान नष्ट होता है, तब आत्मा का बोध उसी प्रकार होता है जैसे अपने ही गले की कण्ठी को पुनः पाने का अनुभव होता है।

The Self is always present, yet due to ignorance, it appears as though it is not. When ignorance is destroyed, the Self becomes evident—just like realizing that the lost necklace is actually around one's own neck.

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता।
जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते॥४५॥

भ्रान्ति भूत की ठूँठ में, जीव हो ब्रह्म समान।
जाने जीव के तत्व को, होता तत्व का ज्ञान॥४५॥

जैसे अज्ञानवश वृक्ष के ठूंठ में पुरुष की भ्रांति होती है, वैसे ही अज्ञान से ब्रह्म में जीवत्व का आरोप होता है। जब जीव के वास्तविक स्वरूप को जाना जाता है, तब यह भ्रांति समाप्त हो जाती है।

Just as one may mistake a tree stump for a man due to illusion, the attributeless Brahman is mistaken as the individual soul. But when the true nature of the j□va is realized, the illusion of individuality vanishes.

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमञ्जसा।
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत्॥४६॥

दिशा भ्रम हो नई जगह, सूर्योदय से पहचान।
'मैं' 'मैरा' अज्ञान समझ, करो तत्त्व का ज्ञान॥४६॥

जैसे अपरिचित स्थान में दिशाओं का भ्रम सूर्य के दर्शन से दूर हो जाता है, वैसे ही आत्मतत्त्व के अनुभव से उत्पन्न ज्ञान, "मैं" और "मेरा" रूपी अज्ञान को समाप्त कर देता है।

The knowledge arising from the direct experience of the Self quickly removes the ignorance of "I" and "mine," just as the confusion of directions vanishes upon seeing the sun.

सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं जगत्।
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा॥४७॥

आत्म में ही देख जगत, योगी सम्यक् ज्ञान।
सब है एक आत्म स्वरुप, ज्ञान चक्षु से विज्ञान॥४७॥

यथार्थ ज्ञान से युक्त योगी अपने ज्ञान नेत्र से सम्पूर्ण जगत को अपने ही आत्मा में स्थित देखता है और सम्पूर्ण को एक ही आत्म स्वरूप में अनुभव करता है।

The yogi endowed with true knowledge sees the entire universe as existing within his own Self, and perceives all as one Self alone through the eye of wisdom.

जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत्।
सच्चिदानन्दरूपत्वात् भवेद्भ्रमरकीटवत्॥४९॥

हो सत् चित् आनन्द स्वरुप, करे उपाधि त्याग।
ज्यूँ कीट भँवरा बने, जीवन मुक्त वीतराग॥४९॥

जो ज्ञानी आत्मस्वरूप को जान चुका है, वह जीवन में ही मुक्त हो जाता है। जैसे कीट ध्यानपूर्वक भ्रमर का ही स्वरूप धारण कर लेता है, वैसे ही वह ज्ञानी पूर्व उपाधियों के गुणों को त्यागकर सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मरूप बन जाता है।

The one who has realized the truth becomes liberated even while living. Just as a worm, meditating intensely on the wasp, becomes the wasp itself, the knower gives up all former limitations and becomes the blissful Self.

बाह्यर्गानित्यसुखासक्तिं हित्वाऽऽत्मसुखनिर्वृतः।
घटस्थदीपवत्स्वस्थः स्वान्तरेव प्रकाशते॥५१॥

बाह्य अनित्य सुखसक्ति, करता ज्ञानी त्याग।
घट स्थित दीपक सा, स्व प्रकाश हो जाग॥५१॥

जो तत्वज्ञानी है वह बाह्य और अनित्य सुखों में आसक्ति को त्याग कर आत्मसुख में ही संतुष्ट रहता है। वह घटस्थ दीपक की भाँति स्व में स्थित होकर भीतर ही प्रकाशित होता है।

Renouncing attachment to external and impermanent pleasures, the wise one delights in the bliss of the Self. Like a lamp placed inside a jar, he remains centered in himself, shining inwardly.

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैरलिप्तो व्योमवन्मुनिः।
सर्ववित् मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत्॥५२॥

उपाधि में स्थित मुनि रहे, अलिप्त ज्यूँ आकाश।
व्यवहार जैसे मूर्ख सा, अनासक्त वायु भास॥५२॥

मुनि (ज्ञानी पुरुष) उपाधियों में रहते हुए भी आकाश की तरह उनके गुणों से अलिप्त रहता है। वह सब कुछ जानने पर भी मूर्ख की तरह व्यवहार कर सकता है, और वायु के समान पूर्णतः अनासक्त होकर विचरण करता है।

Though residing within up�dhis (limiting adjuncts), the sage remains unaffected by their qualities—like the sky. Though all-knowing, he may appear ignorant in behavior and moves unattached like the wind.

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः।
जले जलं वियद्वयोम्नि तेजस्तेजसि वा यथा॥५३॥

हो उपाधियाँ नष्ट जब, मुनि विष्णु में विलीन।
ज्यूँ तेज आकाश जल, स्व में हो तल्लीन॥५३॥

जब मुनि की उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं, तब वह निर्विशेष परमात्मा विष्णु में ऐसे विलीन हो जाता है जैसे जल जल में, आकाश आकाश में, और तेज तेज में समा जाता है।

When the sage's up□dhis (limiting adjuncts) are dissolved, he merges indistinguishably into the all-pervading Lord Vishnu—just as water merges into water, space into space, and fire into fire.

यल्लाभान्नापरो लाभो, यत्सुखान्नापरं सुखम्।
यज्ज्ञानान्न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥५४॥

लाभ में यह लाभ बड़ा, ज्ञान में परम ज्ञान।
सुख बड़ा दूसरा नहीं, ब्रह्म उसे ही मान॥५४॥

जिस लाभ से बड़ा कोई और लाभ नहीं, जिस सुख से श्रेष्ठ कोई और सुख नहीं, और जिस ज्ञान से ऊँचा कोई अन्य ज्ञान नहीं — वही ब्रह्म है, ऐसा निश्चयपूर्वक समझना चाहिए।

That gain beyond which there is no greater gain, that joy beyond which there is no greater joy, and that knowledge beyond which there is no greater knowledge — know that alone to be Brahman.

यद्दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥५५॥

परम दूजा दर्शन नहीं, बचे न दूजा ज्ञान।
प्राप्त फिर कुछ शेष नहीं, ब्रह्म उसे ही मान॥५५॥

जिसे देखने के बाद कोई अन्य वस्तु देखने योग्य नहीं बचती, जिसे प्राप्त करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता, और जिसे जानने के बाद जानने योग्य कुछ शेष नहीं रहता — उसी को ब्रह्म समझो।

That which, once seen, leaves nothing more to be seen; once attained, leaves no rebirth; once known, leaves nothing else to be known — know that alone to be Brahman.

तिर्यगूर्ध्वमधा पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम्।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥५६॥

सर्वव्यापक व अद्वय है, सत् चित् आनन्द जान।
अनन्त नित्य जो एक है, ब्रह्म उसे ही मान॥५६॥

जो ब्रह्म चारों ओर —
तिर्यक् (आड़ा), ऊर्ध्व (ऊपर), अधः (नीचे) —
पूर्ण रूप से व्याप्त है; जो सच्चिदानन्दस्वरूप, अद्वैत, अनन्त,
नित्य और एकमात्र है — उसी को ब्रह्म समझना चाहिए।

That which pervades all directions — across, above, and below — which is complete, non-dual, of the nature of existence, consciousness, and bliss, infinite, eternal, and one — that alone is Brahman.

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽद्वयम्।
अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥५७॥

अद्वय अखण्ड एकरस है, आनन्दमय यह ज्ञान।
सब वेदों का सार है, ब्रह्म उसे ही मान॥५७॥

जिस अद्वितीय, अखण्ड, आनन्दमय तत्व को वेदान्त शास्त्र दृश्य जगत् के सम्पूर्ण निषेध के माध्यम से लक्षित करते हैं — उस एकरस ब्रह्म को ही जानो।

That non-dual, indivisible, blissful One, which is indicated by the Ved□ntic texts through the process of negating all that is not That — know That alone to be Brahman.

अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः॥५८॥

आनन्दपूर्ण अखण्ड ब्रह्म, आश्रित जीव अपार।
ब्रह्म अंश के आश्रय से, न्यून अधिक भण्डार॥५८॥

अखण्ड आनन्दस्वरूप ब्रह्म के केवल एक अंश —
आनन्द के कण मात्र —
के आधार पर ब्रह्मा से लेकर समस्त जीव-
जन्तु विभिन्न स्तरों पर आनन्द का अनुभव करते हैं।

All beings, from Brahm down to the smallest creature, experience varying degrees of happiness by depending upon mere traces of the infinite, indivisible bliss of Brahman.

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले॥५९॥

सर्व वस्तु व्याप्त ब्रह्म से, चेष्टा ब्रह्म का काम।
ब्रह्म व्याप्त सर्व जगत में, मक्खन दूध में धाम॥५९॥

सभी वस्तुएँ ब्रह्म से युक्त हैं, और उनके सभी व्यवहार ब्रह्म से ही सम्बद्ध हैं। इसलिए ब्रह्म समस्त पदार्थों में वैसे ही व्याप्त है जैसे दूध में मक्खन व्याप्त रहता है।

All objects are pervaded by Brahman, and all actions are possible because of Brahman. Hence, Brahman is present everywhere—just as butter is present throughout milk.

अनण्वस्थूलमह्रष्वमदीर्घमजमव्ययम्।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥६०॥

सूक्ष्म स्थूल छोटा बड़ा, जन्म व्यय नहीं काम।
रूप गुण वर्ण ब्रह्म नहीं, न कोई इसका नाम॥६०॥

जिसमें कोई सूक्ष्मता या स्थूलता नहीं, न छोटाई है न विशालता, न जन्म है न विनाश; जो रूप, गुण, वर्ण और नाम से रहित है — उसे ही ब्रह्म जानो।

That which is neither subtle nor gross, neither short nor long, unborn and undecaying, without form, qualities, color, or name — know That alone to be Brahman.

यद्भासा भास्यतेऽर्कादि भास्यैर्यत्तु न भास्यते।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥६१॥

सूर्यादि प्रकाशित हो, ब्रह्म न चाहे प्रकाश।
पूर्ण जगत भासित करे, ब्रह्म जगत प्रवास॥६१॥

जिसके प्रकाश से सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं, परंतु जो स्वयं कि
सी अन्य के द्वारा प्रकाशित नहीं होता —
जिससे यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है —
उसी को ब्रह्म समझो।

That by whose light the sun and others shine, but which itself is not illumined by anything else, and by which this entire universe is revealed — know That alone to be Brahman.

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत्।
ब्रह्म प्रकाशते वह्निप्रतप्तायसपिण्डवत्॥६२॥

अन्दर बाहर व्याप्त ब्रह्म, फैले जगत प्रकाश।
जैसे तपते लोह में, हरपल अग्नि का वास॥६२॥

ब्रह्म स्वयं समस्त जगत को भीतर और बाहर से व्याप्त करके उसे प्रकाशित करता है, जैसे अग्नि तपे हुए लोहे के हर अंश में व्याप्त होकर प्रकाशमान होती है।

Brahman shines forth, pervading both the inside and outside of the entire universe, illuminating it all—just as fire permeates and glows through a red-hot iron ball.

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यत्र किंचन।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका॥६३॥

ब्रह्म विलक्षण जगत से, ब्रह्म सिवा ना जान।
शेष सब मृगमरीचिका, जगत मिथ्या पहचान॥६३॥

ब्रह्म जगत से सर्वथा भिन्न है, और ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी वास्तविक नहीं है। यदि कुछ और प्रतीत हो रहा है, तो वह मरुस्थल में मृगमरीचिका (जल की भ्रांति) की तरह मिथ्या है।

Brahman is entirely distinct from the universe; there is nothing apart from Brahman. If anything appears apart from it, it is unreal—just like a mirage appearing as water in a desert.

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यत्र तद्भवेत्।
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्॥६४॥

जो भी देखा और सुना, ब्रह्म सिवा ना जान।
अद्वय सच्चिदानन्द स्वरुप, ब्रह्म ही तत्त्व ज्ञान॥६४॥

जो कुछ भी दृष्टि और श्रवण में आता है, यदि वह ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है तो वह भ्रांति है। तत्वज्ञान होने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वही सब कुछ अद्वय, सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म है।

Whatever is seen or heard, if it appears to be other than Brahman, is false. With the dawn of true knowledge, one realizes that all is none other than the non-dual, existence-consciousness-bliss Brahman.

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत्॥६५॥

सर्वव्यापक सत् चित् स्वरुप, ज्ञान चक्षु से जान।
सूर्य हो पर दिखे नहीं, हो चक्षुहीन अज्ञान॥६५॥

आत्मा सर्वत्र व्याप्त है और सच्चिदानन्दस्वरूप है, परंतु इसे केवल ज्ञान के नेत्र से ही देखा जा सकता है। जो अज्ञान रूपी अंधकार से आच्छन्न है, वह इसे नहीं देख सकता —
जैसे अंधा व्यक्ति सूर्य को नहीं देख पाता।

The Self, being all-pervading and of the nature of existence and consciousness, is seen only through the eye of wisdom. One whose vision is veiled by ignorance cannot perceive it, just as a blind man cannot see the shining sun.

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः।
जीवस्सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम्॥६६॥

श्रुतज्ञान से प्रज्वलित हो, अग्नि सा तपता ज्ञान।
स्वर्ण की भांति मलरहित, स्व ही दैदीप्यमान॥६६॥

श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा जागृत ज्ञानाग्नि में तप कर जीव अपने सारे मल (अज्ञान आदि दोषों) से मुक्त हो जाता है और स्वर्ण की तरह स्वयं प्रकाशित होता है।

Ignited by listening and reflection, the fire of knowledge burns the impurities of the jīva. Freed from all defilements, he shines by himself like purified gold.

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपहृत।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति भासयतेऽखिलम्॥६७॥

हृदयाकाश में उदित हुआ, आत्मा रुपी ज्ञान।
नाश करे अज्ञान को, सर्वव्यापक सम्मान॥६७॥

हृदय रूपी आकाश में जो आत्मा रूपी ज्ञानसूर्य उदित होता है, वह अज्ञानरूपी अंधकार को मिटा देता है और सर्वव्यापक, सर्वाधार रूप में सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है।

The Self, rising in the inner sky of the heart as the sun of knowledge, dispels the darkness of ignorance and shines forth, pervading and supporting all, illuminating the entire universe.

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखं निरंजनम्।
यस्स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः
स सर्ववित् सर्वगतोऽमृतो भवेत्॥६८॥

सर्दी गर्मी सुख दुख परे, देश दिशा या काल।
आनन्दरुप सर्वज्ञ निरंजन, तीर्थ अमृत हर हाल॥६८॥

जो व्यक्ति क्रिया-
रहित होकर, देश, दिशा, काल आदि की अपेक्षा से परे
, सर्दी-गर्मी और सुख-
दुःख के द्वन्द्वों से रहित, नित्य सुखस्वरूप, निरंजन अप
ने आत्मरूपी तीर्थ का सेवन करता है —
वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और अमर हो जाता है।

Transcending space, time, and direction, free from cold, heat, pleasure, and pain—he who meditates upon the sacred Self, untouched and ever-blissful, though actionless, becomes all-knowing, all-pervading, and immortal.

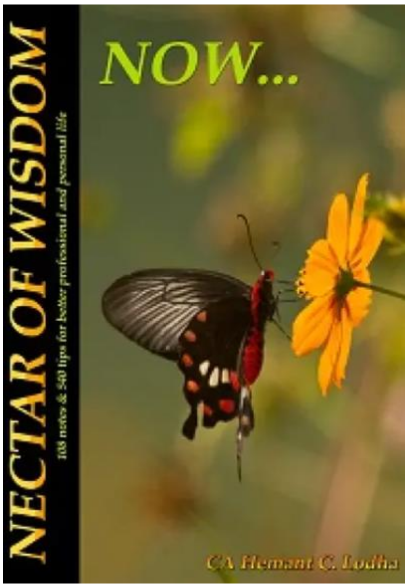
NECTAR OF WISDOM
108 notes & 540 tips for better professional and personal life
NOW...
CA Hemant C. Lodha

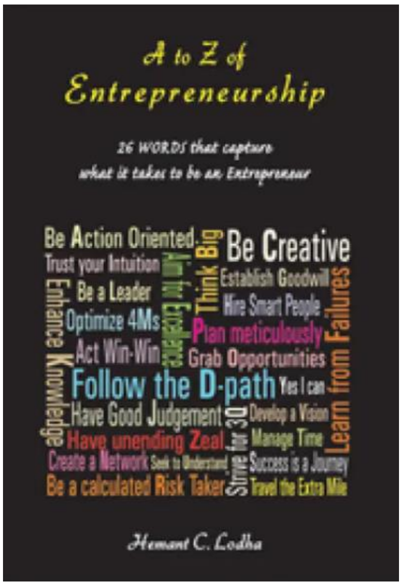
A to Z of Entrepreneurship
26 WORDS that capture what it takes to be an Entrepreneur
Be Action Oriented
Be Creative
Trust your Intuition
Be a Leader
Establish Goodwill
Hire Smart People
Optimize 4Ms
Plan meticulously
Act Win-Win
Grab Opportunities
Follow the D-path
Have Good Judgement
Have unending Zeal
Manage Time
Create a Network
Be a calculated Risk Taker
Travel the Extra Mile
Think Big
Enhance Knowledge
Learn from Failures
Hemant C. Lodha

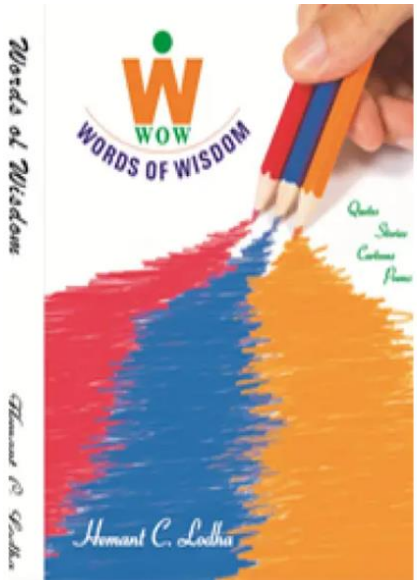
Words of Wisdom
WOW
WORDS OF WISDOM
Hemant C. Lodha

अष्टावक्र महागीता
रूप-कविता
संकल्पना व लेखन
• हेमंत सी. लोढ़ा

श्रीमद्भगवद्गीता
रूप-कविता
• हेमंत लोढ़ा

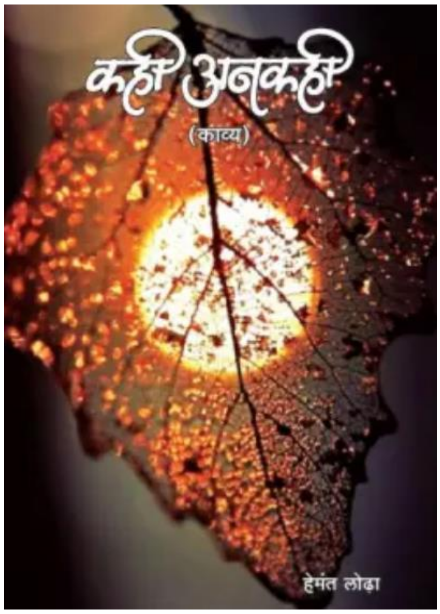
कही अनकही
(काव्य)
हेमंत लोढ़ा

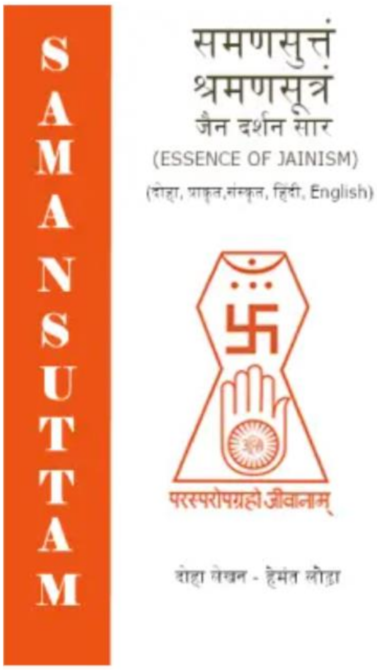
SAMANSUTTAM
समणसुत्तं
श्रमणसूत्र
जैन दर्शन सार
(ESSENCE OF JAINISM)
(दोहा, प्राकृत,संस्कृत, हिंदी, English)
परस्परोपग्रहो जीवानाम्
दोहा लेखन - हेमंत लोढ़ा

A 2 Z of LEADERSHIP
A Guide To What it takes to Be an effective Leader
AUTHOR - HEMANT LODHA
CO-AUTHOR - SWETA MOR GUPTA

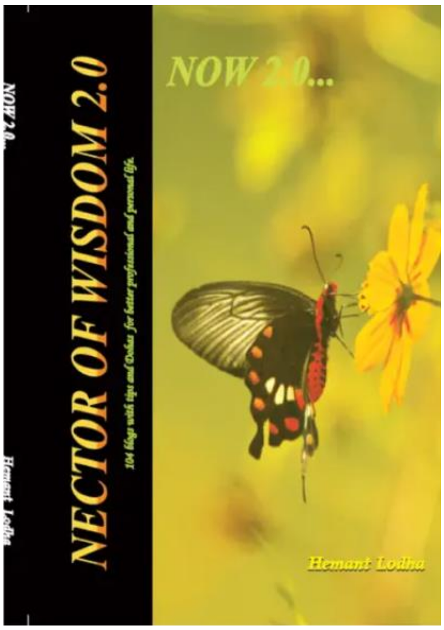
NECTOR OF WISDOM 2.0
NOW 2.0...
Hemant Lodha

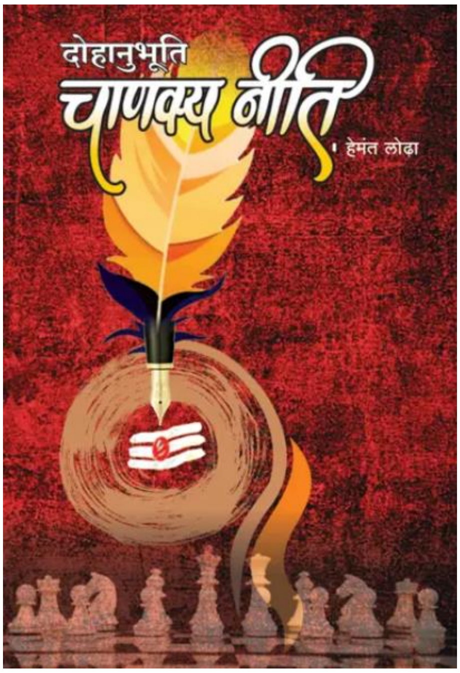
दोहानुभूति
चाणक्य नीति
हेमंत लोढ़ा

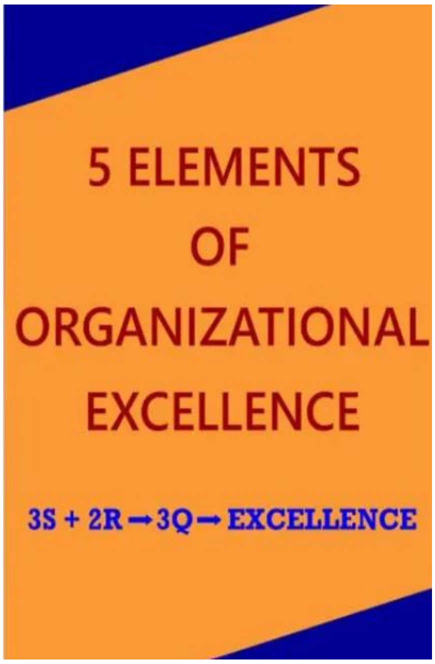
5 ELEMENTS
OF
ORGANIZATIONAL
EXCELLENCE
3S + 2R → 3Q → EXCELLENCE

RATNAKARAND SHRAVAKACHAR
आचार्य समन्तभद्र स्वामी विरचित
रत्नकरण्ड श्रावकाचार
(संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
दोहा लेखन
जैन हेमन्त लोढ़ा

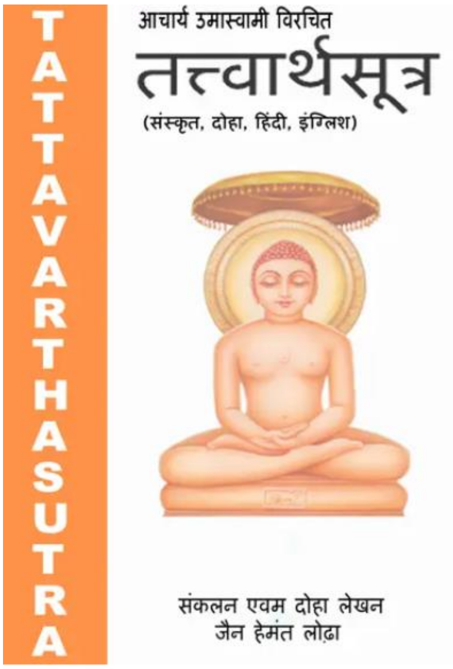
TATTAVARTHASUTRA
आचार्य उमास्वामी विरचित
तत्त्वार्थसूत्र
(संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
संकलन एवम दोहा लेखन
जैन हेमंत लोढ़ा

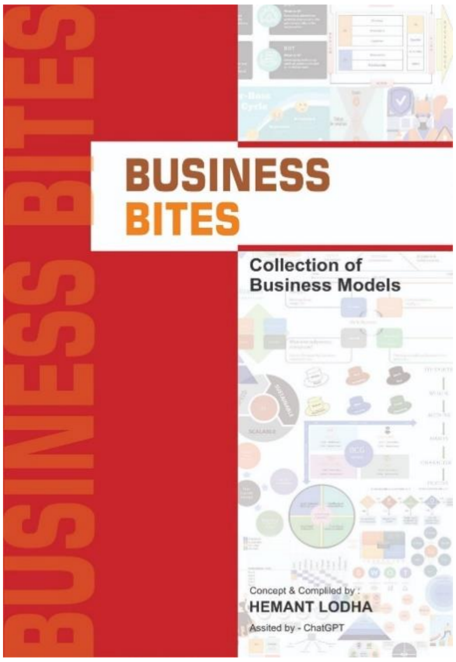
BUSINESS BITES
BUSINESS
BITES
Collection of
Business Models
Concept & Compiled by :
HEMANT LODHA
Assited by - ChatGPT

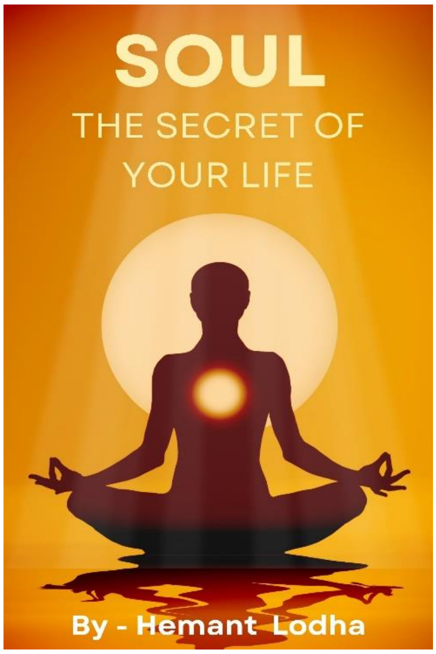
SOUL
THE SECRET OF
YOUR LIFE
By - Hemant Lodha

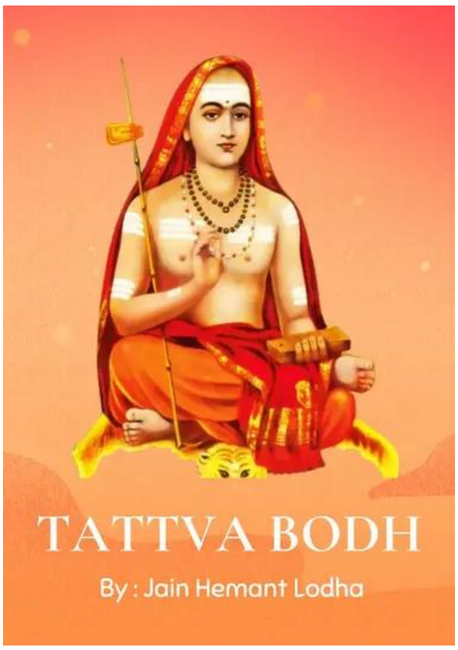
TATTVA BODH
By : Jain Hemant Lodha

CA Hemant Lodha (Jain)

Mr. Hemant Lodha, a chartered accountant by profession is an avid reader whose literary interests include philosophy, spirituality, relationship building, leadership skills & management skills. Born in Jodhpur, to a respected family of limited means, he has been all over the globe before settling in Nagpur in 2002.

He has authored many books such as 'Words of Wisdom', 'Nectar of Wisdom', 'Shrimad Bhagwat Geeta Roopkavita', 'Ashtavakra Mahageeta Roopkavita', 'Kahi Ankahi', 'Samansuttam', 'Chankya Niti' 'A to Z Entrepreneurship' 'A to Z of Leadership' etc.

Being socially active, he is associated with several organizations and has founded "Helplink Charitable Trust" with a motto to LINK THE NOBLE AND THE NEEDY, mainly working in the field of education for deprived children.

He is presently working as a Director of SMS Limited.

He can be easily reached at www.hemantlodha.com